[2012] 10 एस.सी.आर. 732

पारस नाथ राय और अन्य

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

(2012 की दीवानी अपील संख्या 7234)

5 अक्टूबर, 2012

[के.एस. राधाकृष्णन और दीपक मिश्रा, न्यायमूर्तिगण]

भूमि कानून - बिहार जोत समेकन एवं खंडकरण निवारण अधिनियम, 1956- धारा 3 और 4(सी) - विभाजन का वाद - व्यवहार न्यायालय द्वारा खारिज - स्वत्व अपील - जिसके लंबित रहने के दौरान, 1956 के अधिनियम की धारा 3 के तहत अधिसूचना जारी की गई - परिणाम - अभिनिर्धारित : जब एक बार धारा 3 के तहत एक अधिसूचना प्रकाशित हो जाती है, तो क्षेत्रों में स्थित किसी भी भूमि में अधिकारों या हितों की घोषणा के संबंध में या किन्हीं अन्य अधिकारों की घोषणा या न्यायनिर्णयन के लिए हर वाद और कार्यवाही, जिसके संबंध में कार्यवाही इस अधिनियम के तहत की जा सकती है या की जानी चाहिए, जो किसी भी न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष लंबित है, चाहे वह प्राथमिक न्यायालय हो या अपील, संदर्भ या पुनरीक्षण का हो, उस न्यायालय या प्राधिकारी द्वारा इस संबंध में आदेश पारित किए जाने पर, जिसके समक्ष ऐसा वाद या कार्यवाही लंबित है, उसका उपशमन हो जाएगा, यह सुनिश्चित करने के लिए कि चकबंदी प्राधिकारियों का क्षेत्राधिकार अबाधित रहे और उक्त प्राधिकारी व्यवहार न्यायालयों में कार्यवाही से बाधित न हों और उनके निर्णय व्यवहार न्यायालयों के निर्णयों से

बाधित न हों - व्यवहार न्यायालय के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता - वर्तमान वाद में, जब 1956 के अधिनियम की धारा 3 के तहत अधिसूचना जारी की गई थी, तब स्वत्व अपील लंबित थी, जिसके बाद 1956 के अधिनियम की धारा 4(सी) के तहत एक आवेदन इस आशय से दायर किया गया था कि अपील और वाद का कानून के वैधानिक प्रवर्तन द्वारा उपशमन हो गया था - अपीलीय न्यायालय के लिए यह सलाह योग्य होता कि वह एक निष्कर्ष दर्ज करता कि दीवानी वाद की पूरी कार्यवाही का उपशमन हो गया है - लेकिन अपीलीय न्यायालय ने उत्तरदाताओं में से एक के कानूनी वारिसों के प्रतिस्थापन न होने के कारण उपशमन का निर्देश दिया - अतः, वाद के साथ-साथ अपील का भी उपशमन हो गया और परिणामस्वरूप दीवानी कार्यवाही की शुरुआत ही शून्य हो गई और, इसलिए, उक्त कार्यवाही में दर्ज निष्कर्ष समाप्त हो गए - उच्च न्यायालय ने विवाद को उचित परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा और अभिनिर्धारित किया कि 1956 के अधिनियम के तहत पुनरीक्षण चकबंदी प्राधिकारी द्वारा व्यवहार न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों पर अवलंबन करना गलत नहीं ठहराया जा सकता - उक्त निष्कर्ष पूरी तरह से त्रुटिपूर्ण है - मामले को उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया गया ताकि चकबंदी प्राधिकारियों के समक्ष लाए गए आलेख के आधार पर मामले के गुण-दोष पर निर्णय लिया जा सके।

उपशमन - वैधानिक उपशमन और दीवानी प्रक्रिया संहिता के तहत उपशमन के बीच वैचारिक अंतर।

अपीलकर्ता संख्या 1 के पिता और अन्य द्वारा विभाजन का वाद दायर किया गया था। विचारण न्यायालय ने यह मानते हुए वाद को खारिज कर दिया कि यह पक्षकारों को शामिल न करने के कारण दोषपूर्ण था और इसके अलावा अपीलकर्ताओं का यह रुख कि 'यू' 'ए' की पुत्री

थी, सही नहीं प्रतीत होता था। अपीलकर्ताओं ने स्वत्व अपील दायर की। इस बीच, राज्य सरकार ने बिहार जोत समेकन एवं खंडकरण निवारण अधिनियम, 1956 की धारा 3 के तहत अधिसूचना जारी कर क्षेत्र को चकबंदी योजना के अंतर्गत ला दिया। अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय के समक्ष, अधिनियम की धारा 4 (सी) के तहत एक आवेदन इस आशय से दायर किया गया था कि अपील और वाद का कानून के वैधानिक प्रवर्तन द्वारा उपशमन हो गया है। अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय ने आवेदन पर विचार नहीं किया, लेकिन यह अभिनिर्धारित किया कि अपील को आगे बढ़ाने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि अपील के लंबित रहने के दौरान उत्तरदाताओं में से एक की मृत्यु हो गई थी और कानूनी प्रतिनिधि के प्रतिस्थापन के लिए आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था। हालाँकि, इसने अपील को वापस लेने की अनुमति दी। पुनरीक्षण में, उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष दिया कि अपीलकर्ता ने अपील को वापस लेने के लिए कोई प्रार्थना नहीं की थी और, इसलिए, अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश क्षेत्राधिकार के बिना था और तदनुसार उन्होंने मामले को नए सिरे से अपील के निपटारे के लिए अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर दिया। इसके बाद, अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय ने यह मानते हुए अपील का निपटारा कर दिया कि अपीलकर्ता अपील लड़ने के लिए इच्छुक नहीं थे और स्वत्व अपील का उपशमन हो गया।

इस बीच, चकबंदी कार्यवाही में, चकबंदी निदेशक ने अभिनिर्धारित किया कि 'यू' 'डी' की पुत्री थी न कि 'ए' की। उक्त निष्कर्ष व्यवहार न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों के आधार पर निकाला गया था। उक्त आदेश की उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने पुष्टि की थी। लेटर्स पेटेंट अपील में, खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अपीलकर्ताओं द्वारा पैरवी न करने के कारण स्वत्व अपील का उपशमन हो गया था और चूंकि चकबंदी प्राधिकारियों ने

व्यवहार न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों का संज्ञान लिया था, इसलिए एकल न्यायाधीश द्वारा उसमें हस्तक्षेप न करना सही था।

अपीलकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा व्यक्त इस विचार से सहमत होकर त्रुटि की है कि 'यू' 'डी' की पुत्री थी जैसा कि व्यवहार न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया था, बिना इस तथ्य का संज्ञान लिए कि अधिनियम की धारा 4 (सी) के तहत उपशमन के लिए एक आवेदन दायर किया गया था इस आशय से कि अधिनियम की धारा 3 के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद स्वत्व अपील का उपशमन हो गया था। यह आग्रह किया गया कि उच्च न्यायालय ने यह विचार व्यक्त करते हुए एक गंभीर तथ्यात्मक त्रुटि की कि कानूनी प्रतिनिधि के प्रतिस्थापन न होने के कारण अपील का उपशमन हो गया था और इसके अलावा एक बार अपील के साथ-साथ वाद का उपशमन हो जाने के बाद वाद में दर्ज निष्कर्ष निर्णय का आधार नहीं बन सकते थे।

अपील को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1.1. एक बार जब बिहार जोत समेकन एवं खंडकरण निवारण अधिनियम, 1956 की धारा 3 के तहत एक अधिसूचना प्रकाशित हो जाती है, तो क्षेत्रों में स्थित किसी भी भूमि में अधिकारों या हितों की घोषणा के संबंध में या किन्हीं अन्य अधिकारों की घोषणा या न्यायनिर्णयन के लिए हर वाद और कार्यवाही, जिसके संबंध में कार्यवाही इस अधिनियम के तहत की जा सकती है या की जानी चाहिए, जो किसी भी न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष लंबित है, चाहे वह प्राथमिक न्यायालय हो या अपील, संदर्भ या पुनरीक्षण का हो, उस न्यायालय या प्राधिकारी द्वारा इस संबंध में आदेश पारित किए जाने पर, जिसके

समक्ष ऐसा वाद या कार्यवाही लंबित है, उसका उपशमन हो जाएगा, यह सुनिश्चित करने के लिए कि चकबंदी अधिनियम के तहत प्राधिकारियों का क्षेत्राधिकार अबाधित रहे और उक्त प्राधिकारी व्यवहार न्यायालयों में कार्यवाही से बाधित न हों और उनके निर्णय व्यवहार न्यायालयों के निर्णयों से बाधित न हों। चकबंदी की योजना का उद्देश्य क्षेत्राधिकार के टकराव से बचना है ताकि उन चकबंदी प्राधिकारियों को क्षेत्राधिकार प्रदान किया जा सके जिन्हें विशेष रूप से पक्षकारों के विरोधी दावों की जांच करनी होती है। इसके अलावा, वैधानिक उपशमन और दीवानी प्रक्रिया संहिता के तहत उपशमन के बीच वैचारिक अंतर है। वैधानिक उपशमन के आधार पर, पूरी कार्यवाही अपनी शुरुआत से ही उपशमन हो जाती है क्योंकि स्थानीय कानून ने न्यायालय के समक्ष उठाई गई शिकायत को दूर करने के लिए एक विशेष मंच के समक्ष अपनाए जाने हेतु एक प्रभावी वैकल्पिक उपचार प्रदान किया है। व्यवहार न्यायालय के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता। [कंडिका 30] [751-सी-जी]

1.2. मौजूदा वाद में, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को स्वत्व अपील में चुनौती दी गई थी। यद्यपि अधिनियम की धारा 4(सी) के तहत एक याचिका दायर की गई थी, लेकिन उस पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, फिर भी अपील को वापस लेने की अनुमति दी गई थी। दीवानी पुनरीक्षण में चुनौती दिए जाने पर, माननीय उच्च न्यायालय ने यह निर्देश देते हुए मामले को प्रतिप्रेषित कर दिया था कि अपील को अभिलेख पर बहाल किया जाए और साथ ही यह निर्देश भी दिया था कि मामले का निपटारा गुण-दोष के आधार पर किया जाएगा, जिसमें अपील सुनने के लिए न्यायालय की सक्षमता भी शामिल है। रिमांड के बावजूद, न्यायालय ने अधिनियम की धारा 4(सी) के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर याचिका का संज्ञान नहीं लिया, बल्कि यह देखा कि वे अपील लड़ने के लिए इच्छुक नहीं हैं और तदनुसार निर्देश

दिया कि प्रतिस्थापन न होने के कारण अपील का उपशमन हो गया। यह आदेश पूरी तरह से विवेक का प्रयोग न करना दर्शाता है। जैसा कि स्पष्ट है, चकबंदी कार्यवाही जारी रही थी और एक चरण पर प्राधिकारी व्यवहार न्यायालय के निष्कर्षों पर अवलंबन कर रहे थे और किसी अन्य चरण पर इसकी अनदेखी कर रहे थे। अंततः, मामला एक रिट याचिका में उच्च न्यायालय तक पहुंचा। एकल न्यायाधीश ने फैसला सुनाया कि चकबंदी प्राधिकारी व्यवहार न्यायालय के निष्कर्षों पर अवलंबन करने में न्यायसंगत थे। (कंडिका 33] [753-सी-जी]

1.3. वर्तमान वाद में, प्रारंभिक डिक्री के विरुद्ध स्वत्व अपील लंबित थी और धारा 4(सी) के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था। अपीलीय न्यायालय के लिए यह सलाह योग्य होता कि वह एक निष्कर्ष दर्ज करता कि दीवानी वाद की पूरी कार्यवाही का उपशमन हो गया है। लेकिन अपीलीय न्यायालय ने उत्तरदाताओं में से एक के कानूनी वारिसों के प्रतिस्थापन न होने के कारण उपशमन का निर्देश दिया। अतः, वाद के साथ-साथ अपील का भी उपशमन हो गया और परिणामस्वरूप दीवानी कार्यवाही की शुरुआत ही शून्य हो गई और, इसलिए, उक्त कार्यवाही में दर्ज निष्कर्ष समाप्त हो गए। रिट याचिका पर विचार करने वाले न्यायाधीश और साथ ही साथ अंतर-न्यायालयी अपील का निर्णय लेने वाले न्यायाधीशों ने विवाद को उचित परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा और राय दी कि 1956 के अधिनियम के तहत पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा व्यवहार न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों पर अवलंबन करने को गलत नहीं ठहराया जा सकता। उक्त निष्कर्ष पूरी तरह से त्रुटिपूर्ण है और पलटे जाने योग्य है। (कंडिका 36] [755-जी-एच; 756-ए-डी]

1.4. एकल न्यायाधीश के साथ-साथ खंड पीठ द्वारा पारित आदेशों को अपास्त किया जाता है और मामले को एकल न्यायाधीश के अभिलेख में प्रतिप्रेषित किया जाता है ताकि

चकबंदी प्राधिकारियों के समक्ष लाए गए आलेख के आधार पर गुण-दोष पर मामले का विनिश्चय किया जा सके। [कंडिका 37] [756-ई]

डॉ. जगदीश प्रसाद उर्फ जगदीश प्रसाद गुप्ता बनाम सरदार सत्य नारायण सिंह और अन्य, **1982 बीबीसीजे-1 और** *राजा महतो और एक अन्य बनाम मंगल महतो और अन्य* **1982 पीएलजेआर 392 - अनुमोदित नहीं।**

श्रीनिबास जेना और अन्य बनाम जनार्दन जेना और अन्य, **ए.आई.आर. 1981 उड़ीसा 1 (एफ.बी.) - प्रतिष्ठित।**

राम आधार सिंह बनाम रामरूप सिंह और अन्य **ए.आई.आर. 1968 एस.सी. 714: 1968 एस.सी.आर. 95;** *छत्तर सिंह और अन्य बनाम ठाकुर प्रसाद सिंह* **(1975) 4 एस.सी.सी. 457;** *सत्यनारायण प्रसाद साह और अन्य बनाम बिहार राज्य* **(1980) पूरक एस.सी.सी. 474;** *मोसमात बीबी रहमानी खातून और अन्य बनाम हरकू गोप और अन्य* **(1981) 3 एस.सी.सी. 173; 1981 (3) एस.सी.आर. 553;**

नथुनी राम और अन्य बनाम श्रीमती खीरा देवी और अन्य **1981 बीबीसीजे 413;** *गोरख नाथ दुबे बनाम हरि नाथ सिंह* **ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 2451: 1974 (1) एस.सी.आर. 339;** *महेंद्रा साड़ी एम्पोरियम (II) बनाम जी.वी. श्रीनिवास मूर्ति* **(2005) 1 एस.सी.सी. 481: 2004 (3) पूरक एस.सी.आर. 931;** *बिमल कुमार और एक अन्य बनाम शकुंतला देवी और अन्य* **(2012) 3 एस.सी.सी. 548;** *रचकोंडा वेंकट राव और अन्य बनाम आर. सत्य बाई (मृतक) कानूनी प्रतिनिधि द्वारा और एक अन्य* **ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 3322: 2003 (3) पूरक**

एस.सी.आर. 629; *मुजफ्फर हुसैन बनाम शराफत हुसैन* **ए.आई.आर. 1933 अवध 562;** *रघुबीर साहू बनाम अयोध्या साहू* **ए.आई.आर. 1945 पटना 482 और** *रेणु देवी बनाम महेंद्र सिंह और अन्य* **ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 1608: 2003 (1) एस.सी.आर. 820 - संदर्भित किया गया।**

नजीर संदर्भ:

1968 एससीआर 95	**संदर्भित किया**	**कंडिकाएँ 15,20,21,23,28,29**
(1975) 4 एससीसी 457	**संदर्भित किया**	**कंडिका 15,23,28,29**
1982 पीएलजेआर 392	**अनुमोदित नहीं**	**कंडिका 16,20,31,32,35**
(1980) पूरक एससीसी 474	**संदर्भित किया**	**कंडिका 16,19,20,24,28,29-32**
1981 (3) एससीआर 553	**संदर्भित किया**	**कंडिका 16,19,25,29,31,32**
1982 बीबीसीजे-1	**अनुमोदित नहीं**	**कंडिका 19,31,32**
1981 बीबीसीजे 413	**संदर्भित किया**	**कंडिका 19**
एआईआर 1981 उड़ीसा 1 (एफ.बी)	**प्रतिष्ठित**	**कंडिका 19,31,35**
1974 (1) एससीआर 339	**संदर्भित किया**	**कंडिका 20**

2004 (3) पूरक एस.सी.आर. 931 संदर्भित किया कंडिका 29

(2012) 3 एससीसी 548 संदर्भित किया कंडिका 35

2003 (3) पूरक एस.सी.आर. 629 संदर्भित किया कंडिका 35

एआईआर 1933 अवध 562 संदर्भित किया कंडिका 35

एआईआर 1945 पट 482 संदर्भित किया कंडिका 35

2003 (1) एससीआर 820 संदर्भित किया कंडिका 35

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2012 की दीवानी अपील संख्या 7234.

पटना उच्च न्यायालय के लेटर्स पेटेंट अपील संख्या 947/2002 में दिनांक 02.05.2011 के निर्णय और आदेश से।

नागेंद्र राय, समरहर सिंह, शांतनु सागर, अभिषेक कुमार सिंह, गोपी रमन, टी. महिपाल अपीलकर्ताओं के लिए।

एस.बी. सान्याल, अखिलेश कुमार पांडे, सुधांशु सरन, शालिनी चंद्रा, स्वाति चंद्रा, अखिलेश कुमार पांडे, गोपाल सिंह, चंदन कुमार, के.एन. राय उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय **दीपक मिश्रा, न्यायमूर्ति**

द्वारा दिया गया। 1. अनुमति प्रदान की गई।

2. पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा लेटर्स पेटेंट अपील संख्या 947/2002 में पारित आदेश दिनांक 02 मई, 2011 की कानूनी स्वीकार्यता पर प्रश्न उठाते हुए, जिसके द्वारा दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 1851/2000 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 09 अगस्त, 2002 को अनुमोदन की मुहर लगाई गई है, जिसमें विद्वान एकल न्यायाधीश ने चकबंदी निदेशक, बिहार, पटना द्वारा पुनरीक्षण वाद संख्या 151/75, 152/75 और 624/77 में क्रमशः पारित आदेश दिनांक 17 दिसंबर, 1999 की पुष्टि की थी, विशेष अनुमति द्वारा वर्तमान अपील दायर की गई है।

3. तथ्य जो वर्तमान अपील के न्यायनिर्णयन के लिए आवश्यक हैं, वे यह हैं कि विभाजन का वाद संख्या 123/1963 शेष नाथ राय, अपीलकर्ता संख्या 1 के पिता और अन्य द्वारा कांता राय और अन्य के विरुद्ध दायर किया गया था। वाद में विभाजन का दावा खाता संख्या 18 के तहत भूखंड/खेसरा संख्या 593 और 595 पर स्थित घर और "सहन" से संबंधित था। विद्वान मुंसिफ ने निर्णय और डिक्री दिनांक 4 अप्रैल, 1968 द्वारा वाद को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि वादी का यह रुख कि एक उमरावती देवी, अनंत राय की पुत्री थी, सही नहीं प्रतीत होता था। विद्वान मुंसिफ ने आगे राय दी कि पहले भी विभाजन हो चुका था और वाद आवश्यक पक्षकारों को शामिल न करने के कारण दोषपूर्ण था। हालाँकि, निर्धारित स्थिति पर, उन्होंने हिस्सों को अलग किया और निष्कर्ष निकाला कि वादी किसी भी राहत के हकदार नहीं थे और तदनुसार वाद को खारिज कर दिया।

4. उपरोक्त निर्णय और डिक्री से असंतुष्ट होकर अपीलकर्ताओं ने 1968/71 की स्वत्व अपील संख्या 30/41 दायर की। यह ध्यान देने योग्य है कि राज्य सरकार ने इस बीच बिहार जोत समेकन एवं खंडकरण निवारण अधिनियम, 1956 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 3 के तहत अधिसूचना संख्या 1168 दिनांक 26 नवंबर, 1970 जारी कर क्षेत्र को चकबंदी योजना के अंतर्गत ला दिया था। अपीलीय न्यायालय के समक्ष अधिनियम की धारा 4 (सी) के तहत एक याचिका दायर की गई थी कि कानून के वैधानिक प्रवर्तन द्वारा अपील और वाद का उपशमन हो गया था। अपीलीय न्यायालय आवेदन पर विचार करने में असफल रहा और निर्णय लिया कि अपील को आगे बढ़ाने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि अपील के लंबित रहने के दौरान एक उत्तरदाता की मृत्यु हो गई थी और प्रतिस्थापन के लिए आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था। हालाँकि, उन्होंने निम्नलिखित अवलोकन करते हुए अपील को वापस लेने की अनुमति दी:-

> "वर्तमान अपील में मुझे लगता है कि वादी-अपीलकर्ताओं के वाद को विद्वान अधीनस्थ न्यायालय ने खारिज कर दिया था और तदनुसार एक डिक्री तैयार की गई थी। फिर से पन्ना देवी के वारिसों के प्रतिस्थापन न होने से पूरी अपील अक्षम हो गई है और उन उत्तरदाताओं के खिलाफ इसका उपशमन हो गया है। इस प्रकार मुझे कोई संदेह नहीं है कि वापसी के लिए याचिका दायर करने से पहले उत्तरदाताओं के पक्ष में एक निहित अधिकार अस्तित्व में आ गया है। ऊपर उद्धृत प्राधिकारियों पर अवलंबन करते हुए मुझे लगता है कि अपीलकर्ताओं को नया वाद दायर करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। हालाँकि, उन्हें प्रार्थना के अनुसार अपील को वापस लेने की अनुमति दी जाती है।"

5. उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर 1975 की दीवानी पुनरीक्षण संख्या 559 दायर की गई, जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष दिया कि अपीलकर्ता ने अपील को

वापस लेने के लिए कोई प्रार्थना नहीं की थी और, इसलिए, अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश क्षेत्राधिकार के बिना था और तदनुसार उन्होंने मामले को कानून के अनुसार अपील के निपटारे के लिए अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर दिया। यह आगे देखा गया कि अपील की सक्षमता के संबंध में किसी भी दोष का निर्णय अपील की सुनवाई के समय ही अपीलीय न्यायालय द्वारा किया जाएगा।

6. रिमांड के बाद स्वत्व अपील को पुनर्जीवित किया गया और अंततः 26 नवंबर, 1980 को विद्वान उप न्यायाधीश, भभुआ ने इस तथ्य का संज्ञान लिया कि अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था और उत्तरदाता संख्या 1 और 2 ने प्रति-आक्षेप दायर की थी और अपील के उपशमन के लिए एक आवेदन भी दायर किया था। विद्वान उप न्यायाधीश ने पाया कि अपीलकर्ता अपील लड़ने के लिए इच्छुक नहीं था और, तदनुसार, राय दी कि स्वत्व अपील संख्या 30/68 और स्वत्व अपील संख्या 123/63 का उपशमन हो गया।

7. इस चरण पर, चकबंदी कार्यवाही को संदर्भित करना आवश्यक है। आदेश दिनांक 23 मार्च, 1974 के माध्यम से चकबंदी अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आवेदक उमरावती देवी अनंत राय की पुत्री है और इसलिए, उसमें आवेदक के दावे को अस्वीकार किया जाना चाहिए। इस अभिमत पर पहुँचते हुए निर्देश दिया कि ग्राम लखनपट्टी थाना संख्या 407 के हालिया पुनरीक्षण सर्वेक्षण के खाता संख्या 142 में प्रविष्टि जो शेष नाथ राय, उसमें उत्तरदाता, के नाम पर थी, लागू रहेगी। उक्त आदेश से दायर की गई अपीलें अपीलकर्ताओं को कोई सफलता नहीं दिला सकीं।

8. ध्यान दिया जाए, दो पुनरीक्षण याचिकाएं थीं, नामतः पुनरीक्षण याचिका संख्या 151/1975 और 152/1975 जिनका निर्णय एकपक्षीय किया गया था। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने आदेश दिनांक 1.09.1978 द्वारा चकबंदी अधिकारी और उप निदेशक, चकबंदी द्वारा पारित आदेशों की पुष्टि की।

9. पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित दो आदेशों को 1981 की दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 1638 और 1640 में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आदेश दिनांक 15.11.1985 द्वारा आक्षेपित आदेश को अभिखंडित कर दिया और अपर निदेशक को निर्देश दिया कि वे पुनरीक्षण याचिकाओं का निर्णय अन्य लंबित पुनरीक्षणों के साथ करें, यदि उल्लेखित हों।

10. रिमांड के बाद, तीन पुनरीक्षणों, नामतः पुनरीक्षण वाद संख्या 151/1975, 152/1975 और 624/1977 का निपटारा उप निदेशक, चकबंदी द्वारा आदेश दिनांक 8.10.1987 के माध्यम से यह अभिनिर्धारित करते हुए किया गया कि उमरावती देवी ध्यानी राय की पुत्री नहीं थी और विवादित भूमि में उसका कोई अधिकार नहीं था।

11. उपरोक्त सामान्य आदेश को 1987 की दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 5610 में चुनौती दी गई और विद्वान एकल न्यायाधीश ने आदेश दिनांक 14.05.1998 द्वारा यह विचार व्यक्त किया कि उप निदेशक, चकबंदी, निदेशक के प्रभार में रहते हुए पुनरीक्षणों का निर्णय नहीं कर सकते थे और इसलिए, आदेश एक ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया था जिसके पास क्षेत्राधिकार नहीं था और, तदनुसार, मामले को नए सिरे से सुने जाने और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा निपटाए जाने के लिए प्रतिप्रेषित कर दिया।

12. रिमांड के बाद, निदेशक, चकबंदी ने यह विचार व्यक्त करते हुए तीन पुनरीक्षणों को खारिज कर दिया कि उमरावती देवी- ध्यानी राय की पुत्री थी न कि अनंत राय की। उक्त निष्कर्ष व्यवहार न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों के आधार पर निकाला गया था। उक्त आदेश को दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 1851/2000 में चुनौती दी गई। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आदेश दिनांक 9.08.2002 द्वारा अपीलीय प्राधिकारी और पुनरीक्षण प्राधिकारी के विचार से सहमति व्यक्त की और, तदनुसार, रिट याचिका को खारिज कर दिया।

13. विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को लेटर्स पेटेंट अपील संख्या 947/2002 में प्रश्नगत किया गया और खंडपीठ ने राय दी कि चूंकि अपीलकर्ताओं द्वारा पैरवी न करने के कारण अपील का उपशमन हो गया था और चूंकि चकबंदी प्राधिकारियों ने व्यवहार न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों का संज्ञान लिया था, इसलिए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा उसमें हस्तक्षेप न करना सही था। इस विचार का होने के नाते, खंडपीठ ने अपील को खारिज कर दिया। उक्त आदेश वर्तमान अपील में चुनौती का विषय हैं।

14. हमने अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नागेंद्र राय और उत्तरदाताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस.बी. सान्याल को सुना है।

15. श्री नागेंद्र राय द्वारा यह आग्रह किया गया है कि उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण प्राधिकारी और अधीनस्थ मंचों द्वारा व्यक्त इस विचार से सहमत होकर त्रुटि की है कि उमरावती देवी ध्यानी राय की पुत्री थी जैसा कि व्यवहार न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया था, बिना इस तथ्य का संज्ञान लिए कि अधिनियम की धारा 4 (सी) के तहत उपशमन के लिए एक आवेदन दायर किया गया था इस आशय से कि अधिनियम की धारा 3 के तहत अधिसूचना जारी होने

के बाद स्वत्व अपील का उपशमन हो गया था। उनके द्वारा यह आग्रह किया गया है कि उच्च न्यायालय ने यह विचार व्यक्त करते हुए एक गंभीर तथ्यात्मक त्रुटि की है कि कानूनी प्रतिनिधि के प्रतिस्थापन न होने के कारण अपील का उपशमन हो गया था। उनके द्वारा यह तर्क दिया गया है कि एक बार अपील के साथ-साथ वाद का उपशमन हो जाने के बाद वाद में दर्ज निष्कर्ष निर्णय का आधार नहीं बन सकते थे। उक्त प्रस्तुति को पुष्ट करने के लिए उन्होंने हमें *राम आधार सिंह बनाम रामरूप सिंह और अन्य*[1]*; छत्तर सिंह और अन्य बनाम ठाकुर प्रसाद सिंह*[2] के निर्णयों की प्रशंसा की है।

16. इसके विपरीत, उत्तरदाताओं के लिए उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सान्याल का तर्क है कि वाद डिक्री होने और प्रारंभिक डिक्री पारित होने के बाद, यह वाद या अपील या संदर्भ या पुनरीक्षण के दायरे में नहीं आएगा और इसलिए, इसका उपशमन नहीं होगा। उनके द्वारा यह भी आग्रह किया गया है कि व्यवहार न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को शून्य नहीं किया जा सकता है और इसलिए, वाद में दर्ज निष्कर्षों पर अवलंबन किया जा सकता है। अपने प्रस्ताव को मजबूत करने के लिए, उन्होंने अधिनियम की धारा 4 (सी) पर अवलंबन किया है और *राजा महतो और एक अन्य बनाम मंगल महतो और अन्य*[3]*, सत्यनारायण प्रसाद साह और अन्य बनाम बिहार राज्य*[4] *और मोसमात बीबी रहमानी खातून और अन्य बनाम हरकू गोप और अन्य*[5] से प्रेरणा ली है।

---

1 एआईआर 1968 एससी 714.

2 (1975) 4 एससीसी 457.

3 1982 पीएलजेआर 392.

4 (1980) पूरक एससीसी 474.

5 (1981) 3 एससीसी 173.

17. बार में उठाए गए प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतीकरण की सराहना करने के लिए, यहां यह बताना प्रासंगिक है कि अपील के लंबित रहने के दौरान अधिनियम की धारा 3 के तहत एक अधिसूचना अस्तित्व में आई थी। अपील के उपशमन के लिए धारा 4 (सी) के तहत एक आवेदन दायर किया गया था। इसका गलत अर्थ निकाला गया और इसे उत्तरदाताओं के कानूनी प्रतिनिधि के प्रतिस्थापन न होने के कारण अपील के उपशमन के आवेदन के रूप में माना गया। यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि एक समय पर श्री सान्याल द्वारा यह उठाया गया था कि अधिसूचना वापस ले ली गई थी लेकिन श्री राय द्वारा इसका खंडन किया गया कि अधिसूचना की ऐसी वापसी को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और इसे अभिखंडित कर दिया गया था। उक्त स्थिति को श्री सान्याल ने तथ्य के रूप में स्वीकार कर लिया था। यह तथ्यात्मक स्थिति होने के नाते हमें यह संबोधित करने की आवश्यकता है कि अधिनियम की धारा 3 के तहत अधिसूचना जारी होने का क्या प्रभाव होगा।

18. अधिनियम की धारा 4, धारा 3 की उप-धारा 1 के तहत अधिसूचना जारी करने के परिणामों का प्रावधान करती है। एक महत्वपूर्ण परिणाम जैसा कि धारा 4(सी) में निर्धारित किया गया है, इस प्रकार है:-

> 4(सी)- "अभिलेखों के सुधार के लिए प्रत्येक कार्यवाही और क्षेत्र में स्थित किसी भी भूमि में अधिकारों या हितों की घोषणा के संबंध में या किन्हीं अन्य अधिकारों की घोषणा या न्यायनिर्णयन के लिए हर वाद और कार्यवाही, जिसके संबंध में कार्यवाही इस अधिनियम के तहत की जा सकती है या की जानी चाहिए, जो किसी भी न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष लंबित है, चाहे वह प्राथमिक न्यायालय हो या अपील, संदर्भ या पुनरीक्षण का हो,

उस न्यायालय या प्राधिकारी द्वारा इस संबंध में आदेश पारित किए जाने पर, जिसके समक्ष ऐसा वाद या कार्यवाही लंबित है, उसका उपशमन हो जाएगा"।

ध्यान दिया जाए, अधिनियम की धारा 4 के खंड (सी) में पांच प्रावधान हैं। वर्तमान उद्देश्य के लिए प्रासंगिक प्रावधान इस प्रकार है:-

"आगे यह प्रावधान है कि ऐसा उपशमन प्रभावित व्यक्तियों के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगा, ताकि वे इस अधिनियम और इसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अनुसार उपयुक्त चकबंदी प्राधिकारियों के समक्ष उक्त वादों या कार्यवाहियों में विवादित अधिकार या हित पर आंदोलन कर सकें।"

19. पटना उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने *डॉ. जगदीश प्रसाद उर्फ जगदीश प्रसाद गुप्ता बनाम सरदार सत्य नारायण सिंह और अन्य*[6] के वाद में, *नथुनी राम और अन्य बनाम श्रीमती खीरा देवी और अन्य*[7], *श्रीनिबास जेना और अन्य बनाम जनार्दन जेना और अन्य*[8], *राम आधार सिंह* (उपरोक्त), *सत्यनारायण प्रसाद साह* (उपरोक्त), *मोसमात बीबी रहमानी खातून* (उपरोक्त) के निर्णयों को संदर्भित करने के बाद निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:-

"मेरी राय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *सत्यनारायण प्रसाद साह* के पूर्व वाद में निर्धारित सिद्धांत से भिन्नता नहीं दिखाई। इसलिए हमारी राय है कि धारा 4 (सी) के तहत एक वाद, एक अपील, एक संदर्भ या एक पुनरीक्षण का उपशमन होगा और न तो

---

6 1982 बीबीसीजे-I

7 1981 बीबीसीजे 413.

8 एआईआर 1981 उड़ीसा 1 (एफ.बी.)

प्रारंभिक डिक्री और न ही अंतिम डिक्री का उपशमन होगा। इसलिए, हम अधिनियम की धारा 4 (सी) के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर याचिका को खारिज करते हैं। भले ही यह माना जाता है कि अधिनियम की धारा 4 (सी) के तहत अपील का उपशमन होता है, प्रभाव यह होगा कि यह पक्षकार की मदद नहीं करेगा क्योंकि भले ही अपील का उपशमन हो जाए, अंतिम डिक्री जीवित रहती है। बिहार जोत चकबंदी और खंडन निवारण अधिनियम के उद्देश्य के लिए प्रारंभिक डिक्री पारित होने पर वाद समाप्त हो जाता है।"

20. राजा महतो और एक अन्य (उपरोक्त) में विद्वान न्यायाधीशों ने अधिनियम की धारा 3 को संदर्भित किया, धारा 4(सी) की संरचना की जांच की, *राम आधार सिंह* (उपरोक्त), *गोरख नाथ दुबे बनाम हरि नाथ सिंह*[9] के निर्णयों में भेद किया और *सत्यनारायण प्रसाद साह* (उपरोक्त) पर अवलंबन करते हुए, निम्नानुसार राय दी:-

"इसलिए, मेरी राय है कि अधिनियम की धारा 4 (सी) के तहत, वाद, अपील, संदर्भ या पुनरीक्षण का उपशमन होता है न कि डिक्री या प्रारंभिक या अंतिम डिक्री का उपशमन होता है।"

21. *राम आधार सिंह* (उपरोक्त) में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने, उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम, 1953 (इसके बाद '1953 अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की संशोधित धारा 5 के तहत उत्पन्न हुए एक विवाद से निपटते हुए, जिसमें यह प्रावधान था कि 1953 अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के बाद अभिलेखों के सुधार के लिए सभी कार्यवाही और भूमि पर अधिकारों और हितों की घोषणा के लिए, या भूमि के कब्जे

---

9 एआईआर 1973 एससी 2451.

के लिए, या विभाजन के लिए सभी वाद, जो किसी भी प्राधिकारी या न्यायालय के समक्ष लंबित हैं, चाहे वह प्राथमिक न्यायालय, अपील, या संदर्भ या पुनरीक्षण हो, का उपशमन हो जाएगा।

22. अधिनियम की योजना की जांच करने के बाद इस न्यायालय ने इस प्रकार फैसला सुनाया:-

> "हमने अधिनियम के केवल कुछ मुख्य प्रावधानों को संदर्भित किया है; और वे स्पष्ट रूप से दिखाएंगे कि इस मुकदमेबाजी में पक्षकारों के बीच विवाद की विषय-वस्तु, सभी मामले अधिनियम के तहत गठित प्राधिकारियों के दायरे में न्यायनिर्णयन के लिए आते हैं। वास्तव में, अधिनियम की धारा 5 की उप-धारा (2) का खंड (बी), जैसा कि अब है, यह भी निर्धारित करता है कि खंड (ए) के तहत, कार्यवाही का उपशमन, प्रभावित व्यक्तियों के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगा, ताकि वे अधिनियम के तहत और अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अनुसार उपयुक्त चकबंदी प्राधिकारियों के समक्ष उक्त वादों या कार्यवाहियों में विवादित अधिकार या हित पर आंदोलन कर सकें।"

23. *छत्तर सिंह* (उपरोक्त) में जब इस न्यायालय के समक्ष अपील लंबित थी, 1953 अधिनियम की धारा 4 के तहत एक अधिसूचना जारी की गई थी। उक्त अधिनियम की धारा 5(2)(ए) के संचालन के आधार पर, वाद और उससे लंबित अन्य कार्यवाहियों का वैधानिक उपशमन हुआ था। तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने *राम आधार सिंह* (उपरोक्त) के निर्णय को संदर्भित किया और राय दी कि इस न्यायालय के समक्ष लंबित अपीलें भी वैधानिक प्रावधान के परिणामस्वरूप उपशमित हो जाएंगी। इस न्यायालय ने फैसला सुनाया कि वाद और अपील का

उपशमन हो गया और पक्षकारों के लिए उपयुक्त चकबंदी प्राधिकारियों के समक्ष अपने अधिकारों को सुलझाने का विकल्प खुला था।

24. इस चरण पर, *सत्यनारायण प्रसाद साह* (उपरोक्त) में इस न्यायालय की घोषणा को संदर्भित करना प्रासंगिक है। इस न्यायालय ने, 1956 के अधिनियम की धारा 4(सी) की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखते हुए, अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय की डिक्री को "शून्य" नहीं करना चाहिए था, बल्कि केवल यह घोषित करना चाहिए था कि कार्यवाही का उपशमन हो गया, जिसका निश्चित रूप से मतलब है कि दीवानी कार्यवाही शून्य हो गई।

25. *मोसमात बीबी रहमानी खातून* (उपरोक्त) में विद्वान अपर अधीनस्थ न्यायाधीश ।, गया के समक्ष स्वत्व की घोषणा और कुछ कृषि भूमि के कब्जे की वसूली के लिए एक स्वत्व वाद दायर किया गया था। विचारण न्यायालय ने यह घोषित करते हुए वाद को डिक्री किया कि वादी कुछ खातों के मालिक थे और उसी के कब्जे को वापस पाने के हकदार थे। अपील दायर किए जाने पर विद्वान जिला न्यायाधीश, गया ने अपील को खारिज कर दिया और विचारण न्यायालय की डिक्री की पुष्टि की। द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय ने इस तथ्य का संज्ञान लिया कि जिला न्यायालय के समक्ष अपील के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादियों में से एक की मृत्यु हो गई थी और उसके कानूनी प्रतिनिधियों को न तो पक्षकार बनाया गया था और न ही उसके अधीन दावा करने वाले किसी व्यक्ति को जिला न्यायालय में लंबित अपील में प्रतिस्थापित किया गया था। उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील के लंबित रहने के दौरान यह बताते हुए एक शपथपत्र दायर किया गया था कि 1956 के अधिनियम की धारा 3 के तहत एक अधिसूचना जारी की गई थी और उक्त अधिनियम की धारा 4 में प्रयुक्त भाषा को देखते हुए वाद और अपीलों

का उपशमन हो गया था। उच्च न्यायालय ने प्रस्तुति को स्वीकार कर लिया और यह कहते हुए अपील का निपटारा कर दिया कि कार्यवाही का उपशमन हो गया और परिणामस्वरूप अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाने योग्य हैं। इस न्यायालय ने 1973 में संशोधित धारा 4 को संदर्भित किया और उसके बाद अधिनियम की धारा 4 के खंड (सी) के प्रावधानों के भौतिक हिस्से को संदर्भित किया।

26. यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के साथ-साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णयों और डिक्री को, जो इस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं के पक्ष में थे, इस आधार पर अपास्त करने में त्रुटि की थी कि उन कार्यवाहियों का उपशमन हो गया था। उस संदर्भ में, इस न्यायालय ने चकबंदी की योजना की ओर ध्यान दिया और इस प्रकार राय दी:-

> **"9.** जब चकबंदी की योजना शुरू की जाती है, तो अधिनियम चकबंदी में शामिल भूमि के विभिन्न दावों का अधिनियम के तहत स्थापित प्राधिकारियों द्वारा न्यायनिर्णयन का प्रावधान करता है। प्राधिकारियों को भूमि के विरोधी दावों के न्यायनिर्णयन को व्यवहार न्यायालयों में किसी भी कार्यवाही से बाधित हुए बिना आगे बढ़ाने की अनुमति देने के लिए, एक पूर्ण प्रावधान किया गया था कि व्यवहार न्यायालयों के पदानुक्रम में भूमि के दावों को शामिल करने वाली लंबित कार्यवाही, चाहे वह विचारण न्यायालय, अपील या पुनरीक्षण में हो, का उपशमन होना चाहिए। यह प्रावधान यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया था कि चकबंदी अधिनियम के तहत प्राधिकारियों के समक्ष भूमि के दावों का न्यायनिर्णयन अबाधित रहे, बिना व्यवहार न्यायालयों में कार्यवाही से बाधित हुए या जोत की चकबंदी के दौरान व्यवहार न्यायालयों के निर्णयों से बाधित या रूकावट डाले बिना।

परस्पर विरोधी क्षेत्राधिकारों के परिणामस्वरूप होने वाले संघर्ष से बचने के लिए, विधायिका ने प्रावधान किया कि चकबंदी में रखी गई भूमि के दावों को शामिल करने वाली कार्यवाहियों की विशेष रूप से चकबंदी अधिनियम के तहत प्राधिकारियों द्वारा जांच की जानी चाहिए और सभी परस्पर विरोधी क्षेत्राधिकार बंद हो जाएंगे। साथ ही लंबित कार्यवाहियों से निपटना आवश्यक था और इसीलिए ऐसी कार्यवाहियों के उपशमन का प्रावधान किया गया।"

27. यह ध्यान देने योग्य है कि इस न्यायालय ने दीवानी कानून और 1956 के अधिनियम की योजना में उपशमन के वैचारिक अंतर पर ध्यान दिया और देखा कि यदि दीवानी प्रक्रिया संहिता में वैचारिक रूप से समझी गई उपशमन को 1956 के अधिनियम की धारा 4 में आयात किया जाता है, तो यह अपूरणीय क्षति पहुंचाएगा और वह पक्षकार जिसकी अपील लंबित है, अपीलीय न्यायालय को समझाने का मौका खो देगा, जो यदि सफल होता, तो उस दूसरे पक्ष के खिलाफ पासा पलट देता जिसके पक्ष में अपील के उपशमन पर निर्णय, डिक्री या आदेश अंतिम हो जाता। पीठ ने आगे कहा कि इसे ध्यान में रखते हुए, विधायिका का इरादा था कि न केवल अपील या पुनरीक्षण का उपशमन होगा, बल्कि जिस निर्णय, आदेश या डिक्री के खिलाफ अपील लंबित है, वह भी शून्य हो जाएगा क्योंकि उनका भी उपशमन हो जाएगा और इससे चकबंदी प्राधिकारी चकबंदी में शामिल भूमि में स्वत्व या अन्य अधिकारों या हितों के दावों का न्यायनिर्णयन करने के लिए स्वतंत्र हो जाएंगे।

28. इस चरण पर, यह उल्लेख करना उचित है कि *राम आधार सिंह* (उपरोक्त) और *छत्तर सिंह* (उपरोक्त) के निर्णयों का संदर्भ दिया गया था। उसमें निर्धारित अनुपात का विश्लेषण

करने के बाद, इस न्यायालय ने *सत्यनारायण प्रसाद साह* (उपरोक्त) में दी गई घोषणा की ओर ध्यान दिया और निम्नानुसार कहा: -

> "उपर्युक्त दोनों निर्णयों को *सत्यनारायण प्रसाद साह बनाम बिहार राज्य* (उपरोक्त) में देखा गया था। उस वाद में अधिनियम की धारा 3 के तहत अधिसूचना जारी होने के मुद्दे पर उस समय जब मामला उच्च न्यायालय में लंबित था, धारा 4(सी) के तहत कार्यवाही को उपशमित करने के साथ-साथ उस वाद को भी जिससे कार्यवाही उत्पन्न हुई थी, एक आदेश दिया गया था। इस न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिकाएं दायर की गईं जिनमें अधिनियम की धारा 4 की संवैधानिक वैधता पर सवाल उठाया गया कि यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 का उल्लंघन है। धारा 4 की शक्ति को चुनौती को खारिज करने के बाद, इस न्यायालय ने *राम आधार सिंह* (उपरोक्त) और *छत्तर सिंह* (उपरोक्त) वाद के निर्णयों की पुष्टि करते हुए, अभिनिर्धारित किया कि हो सकता है कि *उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय की डिक्री को शून्य नहीं करना चाहिए था, बल्कि केवल यह घोषित करना चाहिए था कि कार्यवाही का उपशमन हो गया, जिसे इस न्यायालय ने यह समझा कि दीवानी कार्यवाही शून्य हो जाती है। दूसरे शब्दों में, कार्यवाही अपनी शुरुआत से ही उपशमित हो जाती है और किसी भी चरण में कार्यवाही में कोई भी निर्णय अधिनियम के तहत पक्षकारों द्वारा दावों के न्यायनिर्णयन पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा।"*
>
> [जोर दिया गया]

ऐसा अभिनिर्धारित करने के बाद, पीठ ने इस प्रकार फैसला सुनाया: -

"सिद्धांत और मिसाल दोनों पर यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जहां दीवानी कार्यवाही में विवाद में शामिल भूमि को चकबंदी की योजना के तहत लाने वाली अधिसूचना जारी की जाती है, वहां व्यवहार न्यायालय में लंबित कार्यवाही, चाहे विचारण न्यायालय, अपील या पुनरीक्षण में हो, अधिसूचना जारी होने के परिणामस्वरूप उपशमित हो जाएगी और उपशमन का प्रभाव यह होगा कि पूरी दीवानी कार्यवाही शून्य हो जाएगी। इसलिए, इस अपील में आक्षेपित उच्च न्यायालय का आदेश कानूनी और वैध है जहां तक यह न केवल उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित अपील के उपशमन का निर्देश देता है बल्कि विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णयों और डिक्री को भी उपशमित करता है क्योंकि पूरी दीवानी कार्यवाही शून्य हो गई थी।"

इस चरण पर, हम यह स्पष्ट करने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि हमने उपरोक्त अंशों को विस्तार से पुनरुत्पादित किया है क्योंकि इस न्यायालय ने संक्षेप में कहा है कि न केवल उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित अपील का उपशमन होता है, बल्कि विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष कार्यवाही का भी उपशमन होता है क्योंकि पूरी दीवानी कार्यवाही शून्य हो जाती है क्योंकि यह धारा 4(सी) का प्रभाव है जो अधिनियम की धारा 3(1) के तहत अधिसूचना के प्रभाव से संबंधित है।

29. इस चरण पर, हम *महेंद्रा साड़ी एम्पोरियम (II) बनाम जी.वी. श्रीनिवास मूर्ति*[10] में तीन-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय को संदर्भित करना लाभदायक समझते हैं। न्यायालय कर्नाटक किराया अधिनियम, 1999 की धारा 69 और 70 के प्रभाव और असर से निपट रहा था जो कर्नाटक किराया नियंत्रण अधिनियम, 1961 के निरसन के बाद 31.12.1999 से लागू हुआ

10 (2005) 1 एससीसी 481.

था। इस न्यायालय ने धारा 69 और 70 के तहत विधायी योजना और संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस न्यायालय के समक्ष लंबित कार्यवाही पर 1999 के अधिनियम की धारा 70 की उप-धारा (2) के खंड (बी) और (सी) की प्रयोज्यता को संबोधित किया। इसे पूर्ण शक्ति माना गया और अंततः अभिनिर्धारित किया गया कि पुराने 1961 के अधिनियम को नए अधिनियम, यानी 1999 के अधिनियम द्वारा निरस्त किए जाने के बावजूद, संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत विशेष अनुमति द्वारा दायर की गई अपील का उपशमन नहीं होता है और गुण-दोष पर न्यायनिर्णयन के लिए जीवित रहती है। यह ध्यान रखना उपयुक्त है कि अपील के उपशमन की दलील के संबंध में 1956 के अधिनियम और 1953 के अधिनियम के तहत कुछ निर्णयों पर अवलंबन किया गया था। पीठ ने वैधानिक उपशमन की अवधारणा का उल्लेख किया और *राम आधार* (उपरोक्त), छत्तर सिंह (उपरोक्त), *सत्यनारायण प्रसाद साह* (उपरोक्त) और *मोसमात बीबी रहमानी खातून* (उपरोक्त) के निर्णयों के अवलोकन पर राय दी कि उक्त प्राधिकारियों ने जोत चकबंदी विधान के तहत अधिसूचना जारी होने के परिणामस्वरूप वैधानिक उपशमन के साथ निपटा। यह फैसला सुनाया गया कि उक्त निर्णयों में राज्य विधान के प्रावधान जो न्यायालय के विचार के लिए आए थे, ने मूल वाद के लिए प्रावधान किया, जहां से बाद की कार्यवाही उत्पन्न हुई थी, कि वह स्वयं ऐसे विधान के शुरू होने पर और/या उसके तहत अपेक्षित अधिसूचना जारी होने पर उपशमित हो जाए, बिना इस बात पर ध्यान दिए कि कार्यवाही किस चरण पर लंबित थी। यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपील वाद की निरंतरता थी और चूंकि स्थानीय कानून ने न्यायालय के समक्ष उठाई गई शिकायत को दूर करने के लिए एक विशेष मंच के समक्ष अपनाए जाने हेतु एक प्रभावी वैकल्पिक उपचार का प्रावधान किया था, स्थानीय कानून का प्रभाव कार्यवाही की शुरुआत को ही समाप्त और अकृत/शून्य करने का था

और, इसलिए, न्यायालय के लिए अपील में न्यायनिर्णयन करने के लिए कुछ भी नहीं बचा था जो निष्प्रभावी हो गई थी।

30. कानून की उपरोक्त व्याख्या से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि एक बार अधिनियम की धारा 3 के तहत अधिसूचना प्रकाशित हो जाती है, तो क्षेत्रों में स्थित किसी भी भूमि में अधिकारों या हितों की घोषणा के संबंध में या किन्हीं अन्य अधिकारों की घोषणा या न्यायनिर्णयन के लिए हर वाद और कार्यवाही, जिसके संबंध में कार्यवाही इस अधिनियम के तहत की जा सकती है या की जानी चाहिए, जो किसी भी न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष लंबित है, चाहे वह प्राथमिक न्यायालय हो या अपील, संदर्भ या पुनरीक्षण का हो, उस न्यायालय या प्राधिकारी द्वारा इस संबंध में आदेश पारित किए जाने पर, जिसके समक्ष ऐसा वाद या कार्यवाही लंबित है, उसका उपशमन हो जाएगा, यह सुनिश्चित करने के लिए कि चकबंदी अधिनियम के तहत प्राधिकारियों का क्षेत्राधिकार अबाधित रहे और उक्त प्राधिकारी व्यवहार न्यायालयों में कार्यवाही से बाधित न हों और उनके निर्णय व्यवहार न्यायालयों के निर्णयों से बाधित न हों। यह भी स्पष्ट है कि चकबंदी की योजना का उद्देश्य क्षेत्राधिकार के टकराव से बचना है ताकि उन चकबंदी प्राधिकारियों को क्षेत्राधिकार प्रदान किया जा सके जिन्हें विशेष रूप से पक्षकारों के विरोधी दावों की जांच करनी होती है। इसके अलावा, वैधानिक उपशमन और दीवानी प्रक्रिया संहिता के तहत उपशमन के बीच वैचारिक अंतर है। वैधानिक उपशमन के आधार पर, पूरी कार्यवाही अपनी शुरुआत से ही उपशमित हो जाती है क्योंकि स्थानीय कानून ने न्यायालय के समक्ष उठाई गई शिकायत को दूर करने के लिए एक विशेष मंच के समक्ष अपनाए जाने हेतु एक प्रभावी वैकल्पिक उपचार प्रदान किया है। इस न्यायालय द्वारा आगे यह घोषित किया गया है कि व्यवहार न्यायालय के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता है

और यह ध्यान रखना उपयुक्त है कि *सत्यनारायण प्रसाद साह* (उपरोक्त) के वाद में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय की डिक्री को शून्य नहीं करना चाहिए था, बल्कि यह घोषित करना चाहिए था कि कार्यवाही का उपशमन हो गया, जिसका अर्थ था कि दीवानी कार्यवाही शून्य हो गई, अर्थात, कार्यवाही अपनी शुरुआत से ही उपशमित हो गई।

31. यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि यद्यपि *राजा महतो और एक अन्य* (उपरोक्त) के निर्णय ने *सत्यनारायण प्रसाद साह* (उपरोक्त) के निर्णय को संदर्भित किया, फिर भी गलत तरीके से अनुपात लागू करते हुए राय दी कि न्यायालय के समक्ष लंबित दूसरी अपील का उपशमन हो गया था लेकिन वादों में पारित प्रारंभिक डिक्री और दोनों अपीलों का उपशमन नहीं हुआ था। *डॉ. जगदीश प्रसाद* (उपरोक्त) में विद्वान न्यायाधीश जिन्होंने *राजा महतो और एक अन्य* (उपरोक्त) में निर्णय लिखा था, विविध अपील में खंडपीठ में बैठे थे जो दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश XLIII के तहत एक अपील थी, ने फिर राय दी कि एक वाद, अपील, संदर्भ या पुनरीक्षण का उपशमन होगा न तो प्रारंभिक डिक्री और न ही अंतिम डिक्री का उपशमन होगा। ध्यान दिया जाए, उक्त वाद में खंडपीठ ने यह विचार व्यक्त किया कि इस न्यायालय ने *मोसमात बीबी रहमानी खातून* (उपरोक्त) में *सत्यनारायण प्रसाद साह* (उपरोक्त) में व्यक्त किए गए विचार की ओर ध्यान नहीं दिया था और उस आधार पर दोहराया कि 1956 के अधिनियम के प्रयोजन के लिए प्रारंभिक डिक्री पारित होने पर वाद समाप्त हो जाता है। उसमें यह भी कहा गया है कि धारा 4 (सी) के तहत न तो प्रारंभिक डिक्री और न ही अंतिम डिक्री का उपशमन होगा। उक्त उद्देश्य के लिए उड़ीसा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय *श्रीनिबास जेना और अन्य* (उपरोक्त) पर अवलंबन किया गया था।

32. इस चरण पर, यह स्पष्ट करना उचित है कि पटना उच्च न्यायालय ने *डॉ. जगदीश प्रसाद* (उपरोक्त) और *राजा महतो और एक अन्य* (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय को बिल्कुल गलत तरीके से पढ़ा था। इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पूरी दीवानी कार्यवाही अपनी शुरुआत से ही उपशमित हो जाती है और यह शून्य हो जाती है। *सत्यनारायण प्रसाद साह* (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने डिक्री को अकृत/शून्य करने में उच्च न्यायालय के निर्णय में त्रुटि पाई थी। *मोसमात बीबी रहमानी खातून* (उपरोक्त) के वाद में यह समझाया गया था कि जब चकबंदी की योजना शुरू की जाती है तो इसका क्या प्रभाव होता है। इस न्यायालय ने *सत्यनारायण प्रसाद साह* (उपरोक्त) में घोषणा को संदर्भित किया था और सिद्धांत और मिसाल दोनों में कहा था कि यह स्पष्ट है कि जहां दीवानी कार्यवाही में विवाद में शामिल भूमि को चकबंदी की योजना के तहत लाने वाली अधिसूचना जारी की जाती है, वहां व्यवहार न्यायालय के समक्ष लंबित कार्यवाही चाहे विचारण न्यायालय, अपील या पुनरीक्षण में हो, अधिसूचना जारी होने के परिणामस्वरूप उपशमित हो जाएगी और उपशमन का प्रभाव यह होगा कि पूरी दीवानी कार्यवाही शून्य हो जाएगी। विस्तार से बताने के लिए न केवल निर्णय और डिक्री समाप्त हो जाएंगे बल्कि पूरी दीवानी कार्यवाही शून्य हो जाएगी।

33. इस प्रकार, उपरोक्त निर्णयों में उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया यह विचार कि अपील का उपशमन हो सकता है लेकिन डिक्री का उपशमन नहीं होगा, सही नहीं है, और भी अधिक तब, जब प्रारंभिक डिक्री को अपील में चुनौती दी गई हो। मौजूदा वाद में, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को स्वत्व अपील में चुनौती दी गई थी। यद्यपि अधिनियम की धारा 4(सी) के तहत एक याचिका दायर की गई थी और उस पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, फिर भी अपील को वापस लेने की अनुमति दी गई थी। दीवानी

पुनरीक्षण में चुनौती दिए जाने पर, माननीय उच्च न्यायालय ने यह निर्देश देते हुए मामले को प्रतिप्रेषित कर दिया था कि अपील को अभिलेख पर बहाल किया जाए और साथ ही यह निर्देश भी दिया था कि मामले का निपटारा गुण-दोष के आधार पर किया जाएगा, जिसमें अपील सुनने के लिए न्यायालय की सक्षमता भी शामिल है। रिमांड के बावजूद विचारण न्यायालय ने अधिनियम की धारा 4(सी) के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर याचिका का संज्ञान नहीं लिया, बल्कि यह देखा कि वे अपील लड़ने के लिए इच्छुक नहीं हैं और तदनुसार निर्देश दिया कि प्रतिस्थापन न होने के कारण अपील का उपशमन हो गया। यह आदेश पूरी तरह से मस्तिष्क का प्रयोग न करना दर्शाता है और एक तरह से न्याय के उपहास का मार्ग प्रशस्त करता है। जैसा कि स्पष्ट है, चकबंदी कार्यवाही जारी रही थी और एक चरण पर प्राधिकारी व्यवहार न्यायालय के निष्कर्षों पर अवलंबन कर रहे थे और किसी अन्य चरण पर इसकी अनदेखी कर रहे थे। अंततः, जैसा कि प्रकट है, मामला एक रिट याचिका में उच्च न्यायालय तक पहुंचा। विद्वान एकल न्यायाधीश ने फैसला सुनाया कि चकबंदी प्राधिकारी व्यवहार न्यायालय के निष्कर्षों पर अवलंबन करने में न्यायसंगत थे।

34. हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि चकबंदी प्राधिकारियों के समक्ष अपनी प्रास्थिति और अपने-अपने अंशों के संबंध में अपने संबंधित दावों को प्रतिस्थापित करने के लिए कुछ साक्ष्य प्रस्तुत किए गए थे और कुछ दस्तावेज़ दाखिल किए गए थे, लेकिन जैसा कि प्रमाणित किया जा सकता है, पूरा मुद्दा व्यवहार न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर अवलंबित है।

35. विचार के लिए जो प्रश्न उठता है वह यह है कि यदि अपील जो वाद की निरंतरता है, का उपशमन हो गया था, तो क्या उसमें दर्ज निष्कर्षों पर अवलंबन किया जा सकता था। हमने उल्लेख किया है कि *राजा महतो और एक अन्य* (उपरोक्त) और डॉ. जगदीश प्रसाद

(उपरोक्त) के वाद में पटना उच्च न्यायालय ने यह विचार अपनाया था कि अधिनियम की धारा 3 के तहत अधिसूचना जारी होने पर वाद या अपील का उपशमन हो जाएगा लेकिन न तो प्रारंभिक डिक्री और न ही अंतिम डिक्री का उपशमन होगा। उक्त उद्देश्य के लिए *श्रीनिबास जेना और अन्य* (उपरोक्त), उड़ीसा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा दिए गए निर्णय से प्रेरणा ली गई थी। उड़ीसा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय में, प्रारंभिक डिक्री को अंतिम रूप प्राप्त करने की अनुमति दी गई थी और न्यायनिर्णयन के लिए कुछ भी शेष नहीं था। प्रारंभिक डिक्री और अंतिम डिक्री के बीच अंतर है। हाल ही में *बिमल कुमार और एक अन्य बनाम शकुंतला देवी और अन्य*[11] में इस न्यायालय ने *रचकोंडा वेंकट राव और अन्य बनाम आर. सत्य बाई (मृतक) कानूनी प्रतिनिधि द्वारा और एक अन्य*[12], *मुजफ्फर हुसैन बनाम शराफत हुसैन*[13], *रघुबीर साहू बनाम अयोध्या साहू*[14], *रेणु देवी बनाम महेंद्र सिंह और अन्य*[15] के निर्णयों को संदर्भित करने के बाद, इस प्रकार फैसला सुनाया है:-

> "एक प्रारंभिक डिक्री वह है जो पक्षकारों के अधिकारों और दायित्वों की घोषणा करती है और वास्तविक परिणाम को आगे की कार्यवाही में काम करने के लिए छोड़ देती है। फिर, प्रारंभिक डिक्री के अनुसरण में की गई आगे की पूछताछ के परिणामस्वरूप, पक्षकारों के अधिकार अंततः निर्धारित किए जाते हैं और ऐसे निर्धारण के अनुसार एक डिक्री पारित की जाती है, जो अंतिम डिक्री है। इस प्रकार, मौलिक रूप से, प्रारंभिक और अंतिम डिक्री के बीच अंतर यह है कि: एक प्रारंभिक डिक्री केवल पक्षकारों के अधिकारों और हिस्सों की

---

11 (2012) 3 एससीसी 548.

12 एआईआर 2003 एससी 3322.

13 एआईआर 1933 अवध 562.

14 एआईआर 1945 पट 482.

15 एआईआर 2003 एससी 1608.

घोषणा करती है और प्रारंभिक डिक्री में दिए गए निर्देशों के अनुसरण में कुछ और पूछताछ आयोजित करने और संचालित करने के लिए जगह छोड़ती है, जो पूछताछ आयोजित होने और पक्षकारों के अधिकारों को अंततः निर्धारित करने के बाद ऐसे निर्धारण को शामिल करते हुए एक डिक्री तैयार करने की आवश्यकता होती है जो अंतिम डिक्री है।"

36. पूर्ण पीठ विभाजन की अंतिम डिक्री के विरुद्ध निर्देशित एक अपील पर विचार कर रही थी। पूर्ण पीठ के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या उड़ीसा जोत चकबंदी और भूमि प्रशासन निवारण अधिनियम, 1972 (संक्षेप में '1972 का अधिनियम') की धारा 4(4) के तहत एक अंतिम डिक्री उपशमित हो गई थी। पूर्ण पीठ ने 1972 के अधिनियम की धारा 3(1) के तहत जारी अधिसूचना का उल्लेख किया, धारा 4 की उप-धारा (4) में प्रयुक्त भाषा का सूक्ष्म अवलोकन किया और यह अभिनिर्धारित किया कि एक अंतिम डिक्री कार्यवाही को किसी भूमि के संबंध में अधिकार, स्वत्व या हित के लिए एक वाद या कार्यवाही के रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता है। वहां यह राय दी गई है कि धारा 4(4) में अंतिम डिक्री से उत्पन्न होने वाली अपील शामिल नहीं है क्योंकि यह पक्षकारों के किसी अधिकार, स्वत्व या हित की घोषणा नहीं करेगी बल्कि उन कुछ मामलों से निपटेगी जो पहले ही घोषित किए जा चुके हैं। अंतिम डिक्री के विरुद्ध अपील की लंबितता उस प्रारंभिक डिक्री की अंतिमता को समाप्त नहीं कर सकती जिसने पक्षकारों के अधिकार, स्वत्व और हित की घोषणा पहले ही कर दी है। हम स्पष्टता के लिए दोहरा सकते हैं कि उक्त मामले में, वाद में पारित प्रारंभिक डिक्री अंतिम हो गई थी क्योंकि इसे अपील के माध्यम से चुनौती नहीं दी गई थी। इस प्रकार, तथ्यात्मक परिदृश्य काफी भिन्न था। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि वर्तमान मामले में प्रारंभिक डिक्री के विरुद्ध स्वत्व अपील

लंबित थी और अधिनियम की धारा 4(सी) के तहत एक आवेदन पेश किया गया था। अपीलीय न्यायालय के लिए यह उचित होता कि वह यह निष्कर्ष दर्ज करता कि दीवानी वाद की पूरी कार्यवाही उपशमित हो गई है। दुर्भाग्य से, अपीलीय न्यायालय ने उत्तरदाताओं में से एक के विधिक उत्तराधिकारियों के प्रतिस्थापन न होने के कारण उपशमन का निर्देश दिया। हम इस बात से अवगत हैं कि अधिनियम की धारा 4(सी) के तहत दायर आवेदन पर एक आदेश पारित किया जाना है, लेकिन हमारा इरादा मामले को उस स्तर तक वापस भेजने का नहीं है क्योंकि यह स्पष्ट है कि वाद में अधिकार, स्वत्व और हित तथा प्रास्थिति शामिल थे जो चकबंदी की योजना के अंतर्गत आते हैं। अतः, वाद के साथ-साथ अपील भी उपशमित हो गई और परिणामस्वरूप दीवानी कार्यवाही की शुरुआत ही शून्य हो गई और इसलिए, उक्त कार्यवाही में दर्ज किए गए निष्कर्ष विलुप्त हो गए। रिट याचिका पर विचार करने वाले विद्वान न्यायमूर्ति और साथ ही अन्तः न्यायालय अपील का विनिश्चय करने वाले विद्वान न्यायमूर्तिगण ने वाद को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा और यह राय दी कि 1956 के अधिनियम के तहत पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा व्यवहार न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर निर्भरता में कोई दोष नहीं पाया जा सकता। उक्त निष्कर्ष पूरी तरह से त्रुटिपूर्ण है और इसे उलटने जाने योग्य है और हम ऐसा ही करते हैं।

37. परिणामस्वरूप, अपील को अनुमति दी जाती है, विद्वान एकल न्यायाधीश के साथ-साथ खंडपीठ द्वारा पारित आदेशों को अपास्त किया जाता है और मामले को विद्वान एकल न्यायाधीश के अभिलेख पर प्रतिप्रेषित किया जाता है ताकि चकबंदी प्राधिकारियों के समक्ष लाई गई सामग्री के आधार पर गुण-दोष पर मामले का विनिश्चय किया जा सके। हम पुनरावृत्ति की

कीमत पर भी यह दोहराते हैं कि व्यवहार न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष की सहायता नहीं ली जाएगी। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

बी.बी.बी. अपील स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।